International Journal of Multidisciplinary Research and Development
Online ISSN: 2349-4182, Print ISSN: 2349-5979, Impact Factor: RJIF 5.72
www.allsubjectjournal.com
Volume 4; Issue 5; May 2017; Page No. 365-367

डॉ0 सुधा कृत 'यह तो वही है' उपन्यास में सांस्कृतिक विघटन

डॉ0 ज्ञानी देवी गुप्ता

हिन्दी विभाग, गुरु काशी विश्वविद्यालय, तलवण्डी, साबो, पंजाब, भारत।

प्रस्तावना

मानव–मूल्य संस्कृति मे मूलधारा के निम्न गुण है। समाज के रहन–सहन, खान–पान, वेशभूषा, आदि विचारधारा ही संस्कृति के स्वरूप है। अतः समाज और संस्कृति को अन्यान्योश्रित सम्बन्ध है। समाज और संस्कृति के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए डॉ0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने लिखा है–'हमारी संस्कृति समाज में सामंजस्य उत्पन्न करती हैं । संस्कृति द्वारा ही समाज व्यवस्था की परम्परा बनी रहती हैं । इसके द्वारा एक पीढ़ी के सामाकि जीवन की पद्धति का दूसरी पीढ़ी में संक्रमण होता है। संस्कृति से ही समाज की सरंचना का निर्धारण होता है। समाज की प्रथाएं, परम्पराएं, आर्थिक तथा सामाजिक गतिविधियाँ संस्कृति की ही देन होती है। संस्कृति ही समाज व्यवस्था को बचाए रखने के मूल्यों का निर्धारण करती है।[1] समाज का निखार संस्कृति से ही सम्भव है। संस्कृति ही समाज का दर्पण है क्योंकि यह समाज निर्माण में सहायक है और उसमें निहित है।

डॉ0 उमाकान्त के शब्दों में, ''संस्कृति की पहली अनिवार्यता ही समाज है और संस्कृति का अस्तित्व समाज के अस्तित्व पर निर्भर है। सामाजिक अवस्था के अनुसार ही संस्कृति का स्वरूप होता है। अतः समाज की संघटना का, सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व संस्कृति ही है।[2] डॉ0 रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार –''संस्कृति वह चीज मानी जाती है जो सारे जीवन में व्याप्त है तथा जिसकी रचना और विकास में अनेक सदियों के अनुभवों का साथ है।[3] डॉ0 गुलाब राय ने ''भारतीय संस्कृति की रूपरेखा'' में लिखा है कि ''संस्कृति हमारी जातिगत संस्कारों में निहित है।''[4] भारतीय संस्कृति समन्वय प्रधान है। इसी कारण यहाँ भौतिकता एवं आध्यात्मिकता, प्रवृति एवं निवृति, भोग एवं त्याग, प्रेम एवं श्रेय, गार्हस्थ्य एवं वैराग्य, जड़–चेतन और भला–बुरा और देशी–विदेशी सभी के अर्न्तगत समन्वय स्थापित करने का बड़ा सुन्दर प्रयत्न दिखाई देता है। भारतीय समाज में ब्राहमण, क्षेत्रिय, वैश्य एवं शुद्र चार वर्गो का निर्माण, ब्रहमचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास नामक चार आश्रमों की स्थापना तथा धर्म, अर्थ, काम के साथ मोक्ष का भी समन्वय किया गया है। संस्कृति के स्वरूप को स्पष्ट करने तथा उसे परिभाषित करने के लिए विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न दृष्टियों से अपने–अपने अभिमत व्यक्त किए है। महामाहाध्याय, काव्य–साख्य–वेदान्त तीर्थ, साहित्य वाचेस्पति प0 संकलनारायण जी संस्कृति शब्द में कृ के पूर्व सकार है, उनका अर्थ है समूह और अलंकार (भूषण), जिस कर्म में समाज की शोभा बढ़ती है उसे समुदाय बनाता है और वही संस्कार है, संस्कृति है।[5] मत–मतान्तरों का यह वैविध्य इसलिए सम्भव है और स्वाभाविक भी दिखाई देता है क्योंकि संस्कृति का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक और गहन है। हमारे समाज की सबसे छोटी इकाई मनुष्य है। मनुष्य से परिवार बनता है। परिवारों से समाज। परिवार में रहकर ही मनुष्य सब कुछ सीखता है। अच्छी बातों को अपनाता है बुरी आदतों को छोड़ता है। परिवार में रहकर ही वह अपनी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इस उपन्यास में भी परिवार के महत्व को समझाया गया है। एक उदाहरण देखिए–

'बेटे की चिट्ठी माँ को इतनी अप्रिय लगी कि उसने उसके सैंकड़ों टुकड़े कर डाले– अभागा! बाप से अब और कितने पाप कराएगा? कितने दोस्तों की हत्या कराएगा? अपनी गीली पड़ती आँखें पोंछ लिस्ट देखकर सामान पैक करने लगी। केक–पेस्ट्री से लेकर देशी मिठाई–नमकीन से झोला भर गया। अंडे तो अभी होंगे ही। चाय–कॉफी और मिल्क पाउडर के कई पैकेट दे दिए। पिछली बार रम नहीं दिया था, इस बार बीयर भी नहीं दिया। ले जाने वाले गार्ड से कुछ कहने का मन हुआ, लेकिन कह नहीं सकी। वह रूका रहा तो उसे जाने के लिए संकेत करते हुए कहा, ''ठीक है, आज इतना ही ले जाओ।''[6]

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है जोकि समाज के दायरे में रहकर अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए जीवन पर्यन्त संघर्ष करता है। लेकिन वेदना एवं करुणा ऐसी स्थिति है जो मानव मन को न केवल विचलित करती है बल्कि उसकी दयनीय स्थिति को भी द्योतक करती है। वेदना एवं करुणा की स्थिति तब पैदा होती है जब उसकी पारिवारिक स्थिति समय तथा परिस्थितियों के अनुकूल न हो। जब व्यक्ति अपनी मानसिक पीड़ा को किसी के सामने अभिव्यक्त नहीं कर पाता और व्यक्त करने का साहस उसे तोड़कर रख देता है क्योंकि आमतौर पर व्यक्ति किसी दूसरे के सामने व्यक्ति की मानसिक पीड़ा अत्यंत बढ़ जाती है और उसकी पीड़ा को समझने के लिए अत्यधिक करुणा एवं संवेदना की आवश्यकता होती है। प्रेम पात्र भूल जाता है। संस्कृतिक विघटन का एक उदाहरण देखिए–''

मानव में सभी प्राणियों से अधिक बुद्धि और सोचने समझने की आवश्यकता होती है। मनुष्य किसी भी कार्य को देखकर उस पर विचार करने को विवश हो जाता है और किसी प्रिय या अप्रिय घटना को देखकर मन में किसी संवेदना का जन्म होता है। इस उपन्यास से यही शिक्षा मिलती है कि सुखी परिवार वही होता है जिसमें सब मिलजुल कर प्रेम से रहे व बड़ों का आदर करें उनको सम्मान दें।

राजनीति उस शास्त्र का नाम है जो राज्य, उसके विविध अंगों, संगठनो एवम् कार्यों संबंधित सिद्धांतों का वर्णन करता है। राजनीतिक चेतना अनेक स्तरों पर मानव कार्यों की समीक्षा करती है। राज्य की वह नीति जिसके अनुसार प्रजा का शासन, पालन और अन्य राज्यों से व्यवहार होता है। राजनीति राज्य या शासन की वह नीति है जिसमें समाज के आचार–व्यवहार तथा कानून व्यवस्था राष्ट्रीय जनहित तथा अंतराष्ट्रीय व्यवहार पर ध्यान रखा जाता है। इसी प्रकार राजनीति का संबंध हर व्यक्ति वर्ग, समाज, राष्ट्र एवं राज्य से है। सभी लोग अपने–अपने स्वार्थ को पूरा करने में लगे हुए हैं। किसी भी नेता को देश की कोई चिंता नहीं है–''उसे छुड़ाने के लिए आप किसी राजनेता की मदद क्यों नहीं लेतीं? यह तो उन लोगों के बाएँ हाथ का खेल है। वे लोग जो चाहते हैं, थानेवाले वही करते हैं।'' किसी ने राय दी।

इसमें भी सुधा को किसी ने राय दी कि वह अपने पति को छुड़ाने के लिए किसी राजनेता का सहारा ले।

उसे देखने आए लोगों में एक संभ्रांत प्रौढ़ा भी थीं। वे उसे इस सुझाव का विरोध करते हुए तड़पकर बोल उठी, ''बिल्कुल नहीं, राजनेता की मदद तो भूलकर भी मत लेना। उनसे खतरनाक कोई नहीं होता।'' उन्होंने रूककर आँसू पोंछे और भरे गले से कहा, ''एक राजनेता ने ही मेरी बेटी की हत्या करा दी। मुझे अपने पति की मृत्यु से भी बड़ा आघात इस बेटी को खोकर लगा।''[7] जिस देश को बचाने के लिए लोगों ने अपने प्राणों का बलिदान दिया था। आज उसी देश के नेताओं में उनके प्रति अपनी कोई संवेदना नहीं है। आजकल के नेताओं को देखकर तो लगता है कि नेता लोग वीरों के बलिदान को तो भूल चूके हैं वे गरीबों का खून चूस रहे हैं अगर उन्हें याद है तो सिर्फ अपने खजानों को भरने की। इस उपन्यास में भी राजनैतिक पृष्ठभूमि है। साथ ही उपन्यास का अंत भी इसी से होता है। इस उपन्यास से देश में होने वाले राजनैतिक परिवर्तनों और घटनाओं की अनेक परते खोली हैं। इसलिए कुछ उपन्यास तो इन्हें राजनैतिक उपन्यास ही कहते हैं। इसमें राजनीति का यथार्थ वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास में कैदियों के जीवन पर चिंता व्यक्त की है–''हत्या करा दी, क्यों ?''

''उस व्याभिचारी ने उसे बड़े–बड़े सब्जबाग दिखाए। पूरी तरह अपने जाल में फँसा लिया। फिर अपनी हवस का शिकार बनाया। मेरी चहकती हुई बेटी ! बड़ी प्रतिभा थी उसमें। लेकिन पितृहीन लड़की के मन में एक पुरूष की छत्रछाया में रहने की अतृप्त इच्छा रही होगी। नेता का खोल ओढ़े उस राक्षस की चिकनी–चुपड़ी, बनावटी बातों में आकर वह उसी का अपना संरक्षक मानने लगी। और ˙˙˙उसके बच्चे की माँ बनने वाली थी वह।[8]

आज देश को भ्रष्टाचार रिश्वतखोरी और आंतकवाद जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। उसका एक ही कारण है कि देश की बागडोर भ्रष्ट नेताओं के हाथ में है। ये नेता अपने स्वार्थ के बारे में सोचते हैं। इन भ्रष्ट नेताओं से भारतीय प्रजातंत्रीय प्रणाली को सुरक्षित रखने का अनुरोध किया गया है। इस उपन्यास में राजनीति के नेता लोग समाज के आम लोगों को मरते आराम से देख रहे थे। उनकी चीख पुकार का उन पर कोई भी असर नहीं पड़ता था। अगर उन्हें परवाह थी तो सिर्फ अपनी जान बचाने और खजाने भरने की। उन्हें अपना स्वार्थ पूरा करने के लिए समाज के आम व्यक्ति की चाहे कितनी बार भी बलि क्यों ने देनी पड़े। ऐसा करने में उन्हें कोई संकोच न था–'विपक्ष (राजनीतिक) को यह मुद्दा कटी पतंग की लूट की तरह हाथ लग गया। पहले तो वह फूँक–फूँककर कदम रख रहा था, क्योंकि उसे आशंका थी कि हो सकता है उसके पिछले कार्यकाल में उसी के मिनिस्टरों में से किसी ने चोरी कराई हो। लेकिन अब विपक्षी आश्वस्त होने लगे थे, क्योंकि अगर उनके लोगों का इस चोरी में हाथ होता, तो अब तक सत्ता पक्ष ने जाँच की दिशा उनकी ओर जरूर मोड़ दी होती; लेकिन अभी भी मामले को एक ऐसे आदमी तक ही सीमित रखा गया है।[9]

लेखिका ने स्पष्ट किया है कि प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी रूप में राजनीति से संबंद्ध रहता है। यह वह नीति है जिसके अनुसार राजा अपने राज्य का शासन और प्रजा की रक्षा करता है। आज देश का राजनीतिक वातावरण अत्यधिक दूषित हो चुका है जो भावना आजादी से पहले थी, वह आज समाप्त हो चुकी है।

आज भी हमारे समाज में लोग सुबह उठकर सुरज को पानी देते हैं। उसको नमन करते हैं। सुबह धूप बत्ती करते हैं, भजन करते हैं। भारत एक धार्मिक देश है भले ही इसमें अलग–अलग प्रकार के लोग रहते हैं लेकिन धर्म में सबको समानता दी गई है। कोई किसी के धर्म को बुरा नहीं कहेंगे और न ही नीचा दिखाने का प्रयास करेगा। भारत में सभी धर्मों को समान समझा जायेगा।भले ही सभी लोग अपने अपने धर्मों को मानते हैं। लेकिन कुछ लोग धर्म के नाम पर ढ़ोंगी बन गये है। वे लोगों को लूटते हैं। धर्म के नाम पर जमा हुए पैसों से मौज मस्ती करते हैं। अपने धर्म का नाजायज फायदा उठाते हैं। ये धर्म हमारे देश ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में लोग अपने भगवान को मानते हैं और उनके धर्मों को अपनाते हैं। भले ही वह कहीं पर भी चले जायें। जैसे– पत्नीत्व के मान की रक्षा को अधर्म एवं राजनीति से प्रेरित माना है–

पुलिस वालों की गांव वालो से पिटाई की बात जब पुलिस अफसर को पता चलती है तो वह पूरे गांव को जलाने की बात कहता है।

''आपका कथन राजनीति से प्रेरित है।''

'' 'राज' हमारे हाथ में नहीं है, इसलिए हम केवल 'नीति' की बात करते हैं। राजा बनने पर 'राजनीति' करेंगे।''

और जिसके हाथ में 'राज' होता है, उसकी अनीतियों की कोई सीमा नहीं होती, उस पर कोई नियम लागू नहीं होता। शासन और प्रशासन के सभी लोग अपने को अबद्य मानते हैं। ऐसे में, जब छह पुलिसवालों का पूरा जत्था गाँववालों से बुरी तरह पिटकर लौटा तो बड़ा पुलिस अफसर बौखला गया–[10]

'नीति का उल्लंघन धर्म का उल्लंघन और धर्म का उल्लंघन नीति का उल्लंघन माना जाता था। धर्म और न्याय की राह पर चलने को नैतिक जीवन का आदर्श पथ पर स्वीकारा जाता था। धर्म और न्याय से अभिप्राय है साहित्यिकता, सत्य एवं कल्याण की भावना, त्याग, सेवा, बलिदान एवं तपस्या के भावों को जीवन में अपनाना। घर में बड़े लोगों की सेवा करना भी कर्त्तव्य है। प्रेमचंद–कालीन उपन्यासों में धर्म और नीति की परम्पराओं का पालन करना ही मुख्य कर्तव्य होता था। नैतिक मान्यताओं को न मानना अधर्म है, अनैतिक है। परन्तु उत्तर–प्रेमचंद युग में धर्म और नीति की परिभाषा ही बदल गई है। परिवर्तित मूल्यों के युग में व्यक्ति ने यह समझ लिया कि ईश्वर, धर्म, नीति कुछ नहीं है।[11]

सुधा जी ने नेमी चंद जैन की तरह पुरातनपंथी, धर्म के नाम पर परम्परओं को स्वीकारने में अब व्यक्ति का मन द्वन्द्वरत हो उठता है, क्योंकि वह जान गया है कि नीति और नियम ईश्वरदत न होकर स्वयं मानवसमाज के रचाए हुए है, अतः इस ओढ़ी हुई नैतिकता का कोई अर्थ नहीं है, कोई महत्त्व नहीं है। व्यक्ति में इतना साहस, सामर्थ्य नहीं है कि वह परम्परागत पल रही समाज की मान्यताओं से स्वयं को पृथक् कर ले। वह नीतियों को मानता भी नहीं है, फिर भी उसका पालन करने को मजबूर है, वह ईश्वर और धर्म को पहचानता नहीं, फिर भी डर कर उसकी आराधना करता है, क्योंकि वह शक्तिहीन सामर्थ्य हीन है और वही उसका द्वन्द्व है। लेखिका ने परम्परागत धार्मिक एवं नैतिक रूढ़ियों का खुल कर लेखा–जोखा प्रस्तुत किया है। –''मैं आपको सावधान कर रही हूँ, इस मामले में आपकी उदासीनता से लोगों को शंका हो सकती है।''

''कैसी शंका ?''

''कि कहीं इस हत्या के पीछे आप ˙˙˙।''

''क्या बकती हो ?'' वह चीखकर बोला।

''चीखिए मत। यह रोब अपने मातहतों को दिखाइए। मुझे बताइए कि टिरकु की हत्या किसने की ?''

''यह मैं जानता तो उसे पकड़ नहीं लेता !''[12]

यह बड़े अफसर की पत्नी बड़े अफसर से कहती है वह यह मानती है टिरकू की हत्या उसके पति ने ही करवाई है।

लोग धर्म के नाम पर एक दूसरे से भेदभाव करते हैं। अपना गलत धंधा चलाते हैं। लोग दीवाली के दिन लक्ष्मी की पूजा करते हैं तो कुछ लोग उस दिन शराब पीते हैं और जुआ खेलते हैं। लेखिका ने इस पर चिंता जताई है।

निष्कर्ष

गरीबी और शिक्षित व्यक्ति की बेरोजगारी से उत्पन्न आर्थिक द्वन्द्व आज के साहित्य का मूल स्वर है। इस उपन्यास का मूल स्वर आर्थिक अभाव के कारण उतपन्न सांस्कृतिक संघर्ष है। इस द्वन्द्व की धुरी पर निम्न मध्यवर्गीय परिवार की विभीषका, टूटन, निरूपायता का यर्थाथ अंकन, जीवन मूल्यों की टकराहट का स्वर सुना जा सकता है, तो अर्थ के नाम पर पारिवारिक जीवन की विश्रृखलता, जर्जरता, विकृति, अमानवीयता का चित्र इस उपन्यास में भी देखा जा सकता है। आर्थिक विषमताएं व्यक्ति में खीझ, निराशा और क्रोध उत्पन्न कर देती है, जिससे व्यक्ति अपने अन्तस् में तो द्वन्द्वी हो ही उठता है और साथ ही वाह्य संस्थाओं के प्रति भी विद्रोही हो जाता है।

संदर्भ सूंची

1. डॉ0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना, समाज, पृ.267।
2. डॉ0 उमाकांत मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता पृ0 387।
3. रामधारी सिंह दिनक : भारतीय संस्कृति के चार अध्याय, पृ0 22।
4. डॉ0 गुलाब राय : भारतीय संस्कृति की रूपरेखा, पृ0 1।
5. हरिशंकर शर्मा : भारतीय संस्कृति के आधार, पृ0 3।
6. सुधा ‘यह तो वही है’ पृ 0 46।
7. सुधा ‘यह तो वही है’पृ0 87।
8. सुधा ‘यह तो वही है’पृ0 12।
9. सुधा ‘यह तो वही है’पृ0 90।
10. सुधा ‘यह तो वही है’पृ0 82।
11. अधूरे साक्षात्कार, नेमिचंद जैन, पृ0 22।
12. सुधा ‘यह तो वही है’पृ0 33।